International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 17-06-2019; Accepted: 20-07-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 27-31

‘अपवित्र आख्यान’ में निहित सामाजिक अंतर्द्वन्द्व

नवीन सिंह
शोधार्थी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
उपन्यास ‘अपवित्र आख्यान’ का शीर्षक ही इस बात का द्योतक है कि समाज में कुछ ‘पवित्र’ है और कुछ ‘अपवित्र’। इन्हीं दो तत्वों के आधार पर समाज में विभाजन की शुरूआत हो जाती है जिसके बाद अंतर्द्वंद्व की स्थिति पैदा होती है। हिंदू के लिए मुसलमान अपवित्र है, म्लेच्छ है तो मुसलमान के लिए हिंदू ‘काफिर’। धर्म, जाति, लिंग, भाषा व अन्य सामाजिक उपकरणों (तत्वों) ने आज ‘मनुष्य’ की पहचान को धूमिल कर दिया है। हम हिंदू होते हैं, या मुसलमान होते हैं, हम ब्राह्मण होते हैं या दलित होते हैं, हम पुरुष होते हैं या स्त्री होते हैं, हम हिंदुस्तानी होते हैं या पाकिस्तानी होते हैं और हिंदी भाषी होते हैं या उर्दू भाषी होते हैं लेकिन इन सबके बीच ‘इंसान’ होना भूल जाते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए व्यक्ति, परिवार, समुदाय और राष्ट्र के रूप में हमारी पहचान और संस्कृति विकसित होती जाती है। इसमें बहुत सारे तत्व एक समाज से दूसरे समाज में स्थानांतरित होते रहते हैं।

मूल शब्द: स्थानांतरित, आख्यान’, समुदाय, संस्कृति, अपवित्र आख्यान

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की विशेषता और इसकी वैश्विक स्तर पर पहचान ‘अनेकता में एकता’ के रूप में है। विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषाओं, भौगोलिक विविधताओं के बावजूद भारत की पहचान एक है। भारतीय संस्कृति किसी एक धर्म की नहीं बल्कि सभी धर्मों, संप्रदायों के मिले-जुले स्वरूप का नाम है। कभी इकबाल ने कहा था कि ‘मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना’ लेकिन अतीत में झाँकने पर हमें धर्म के नाम पर विश्व भर में हिंसा का एक लंबा इतिहास मिलता है जो आज और अधिक कट्टरता के साथ बरकरार है। भारतीय समाज में मुसलमान आबादी का एक बड़ा हिस्सा है। सदियों से हिंदू-मुसलमान एक साथ मिल-जुल कर रहते आए हैं। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान ब्रिटिश उपनिवेश से आजाद होने के लिए हिंदू-मुसलमान एक साथ मिलकर लड़े थे किंतु अंग्रेजों ने ‘फूट डालो और शासन करो’ की नीति अपनाकर हिंदू-मुसलमान के बीच जो जहर घोला वह आज और भी घातक रूप में हमारे समाज में फैल रहा है। भारत को आजादी ही देश को विभाजित करके प्राप्त हुई। हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच खींची गई एक लकीर आज एक चौड़ी खाई का रूप धारण कर चुकी है।

भौगोलिक सीमाओं का विभाजन करना और भूल जाना तो आसान होता है लेकिन विश्वास, उम्मीद और संबंधों में जो दरार आती है उसकी भरपाई करने में कई पीढ़ियाँ लग जाती हैं। आजादी के 70 साल बाद भी आज हिंदू और मुसलमान के बीच जो अविश्वास, घृणा, द्वेष और हिंसा का भाव बढ़ा है। ये देश में लोकतांत्रिक शक्तियों के कमजोर होने के कारण हुआ है। राष्ट्र की मूल आत्मा सांप्रदायिक नहीं है फिर भी अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच रिश्ते कटु हैं। आज धर्म और जाति को आधार बनाकर राजनीति हो रही है। इसके कारण समाज में यह कटुता घटने के बजाय लगातार बढ़ती ही जा रही है।

वेश-भूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान और धार्मिक संस्कारों में भिन्नता होने के कारण समाज में एक समुदाय का दूसरे समुदाय के प्रति व्यवहार व नजरिया भिन्न होता है। हिंदुओं का मुसलमानों के प्रति तथा मुसलमानों का हिंदुओं के प्रति घृणा या विद्वेष का कारण उनके बीच संवादहीनता या एक-दूसरे को न समझना है। सदियों से मुसलमान इस देश में रह रहे हैं फिर भी उनके और हिंदुओं के बीच अविश्वास और एक-दूसरे के प्रति फैलाए गए भ्रम ने आज अशिक्षित ही नहीं शिक्षितों की सोच को भी बहुत हद तक जड़ बना दिया है। बहुत-सी परंपराएँ व त्यौहार जो हिंदू के हैं लेकिन मुसलमान भी उसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते है| बहुत-सी परंपराएँ व त्यौहार मुसलमानों के होते जिनमें हिंदू भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते है| बहुत-सी परंपराएँ ऐसी भी हैं जो हिंदू व मुसलमान दोनों की साझी विरासत है| कुछ रिवाज़ और परंपराएँ इस तरह से घुल-मिल गई हैं कि उनकी अलग-अलग पहचान कर पाना मुश्किल है| मुस्लिम संस्कृति में कुछ परंपराएँ ऐसी हैं जो केवल भारत में ही हैं जैसे ताजिया निकालना| हिंदू धर्म में पालकी सजाकर निकालने की परंपरा के तर्ज पर मुस्लिम धर्म में ताजिया की शुरुआत हुई है| सिख धर्म में गुरुद्वारों के ढाँचे में मीनारों और गुंबदों का प्रयोग ईरानी वास्तुकला का प्रभाव है| इस तरह की बहुत सारी साझी संस्कृति की पहचान की जा सकती है| भारतीय मुसलमानों को विश्व-मुस्लिम बिरादरी का अभिन्न अंग मान लिया जाता है। पूरे संसार में मुसलमान जो कुछ भी करते हैं उसे भारतीय मुसलमानों की जातिगत विशेषता कह दिया जाता है। मुस्लिम बहुल इलाकों के लिए ‘छोटा पाकिस्तान’ कहकर लोगों के भीतर भ्रम फैलाया जाता है कि वहाँ पर खूंखार और आतंकी लोग रहते हैं-

‘‘छोटा पाकिस्तान! शहर के लोग उस इलाके को इसी नाम से संबोधित करते थे। हिंदू रिक्शेवाले रात के वक्त उस तरफ जाने से डरते थे- कहीं काटकर लोग अपनी दुकानों में न टाँग लें।... मशीनों पर बड़ी-बड़ी कैंचियाँ रखे दर्जी, उस्तरे घुमाते हज्जाम, द्रतों से गोश्त के टुकड़े लटकाए कसाई- यह सब देखकर कोई भी डर सकता था। जमील भर डरा।...वरना क्या ये लोग उसे मार डालते? हिंदू समझकर?’’[1]

जमील जो कि मुसलमान होते हुए भी लोगों की भ्रामक बातें सुनकर मुस्लिम मुहल्ले में जाने से घबरा रहा था। उसके संस्कार धार्मिक कट्टरता और अतार्किक बातों पर आँख मूंद कर विश्वास करने वाले नहीं थे। जमील शिक्षित व समझदार व्यक्ति था। जमील के भीतर भय उत्पन्न किया समाज के भ्रामक तत्वों ने और उसकी सामान्य पुष्टि कर रहे थे- कैंची, उस्तरा, गोश्त आदि। ये कैंची, उस्तरा चलाने वाले मुसलमान विदेशी मुसलमान नहीं बल्कि भारतीय मुसलमान हैं।

‘‘भारतीय मुसलमानों के संदर्भ में 95 प्रतिशत् से अधिक लोग धर्म-परिवर्तन करके इस्लाम अपनाने वाले स्थानीय लोगों के वंशज हैं। इनमें से ज्यादातर लोग हिंदू समाज के निचले तबकों से आए हैं, जिन्होंने कड़े जातिवाद के कारण सदियों से हर तरह का भेद-भाव, तंगी और सामाजिक सम्मान की अस्वीकृति को झेला था। इस्लाम ने अन्य किसी चीज से ज्यादा उन्हें सामाजिक सम्मान की झलक दिखाई।... इस्लाम में परिवर्तन ने सामाजिक समानता से ज्यादा उन्हें और कुछ

[1] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-14

नहीं दिया। यह किसी भी चुनौती से परे है कि भारतीय मुसलमान उतना ही स्वदेशी है जितना कि अन्य सामाजिक समूह। सिर्फ एक वस्तु जो उसके संबंध में बाहरी है वह है, उसका धर्म इस्लाम, जिसने इतने वर्षों में भारतीय विशेषताएँ अपना ली हैं।''[2]

यहाँ पर यह प्रश्न उठना लाज़िमी है कि क्या धर्म का विदेशी उद्गम किसी व्यक्ति को उसकी धरती से पराया बना सकता है? कभी नहीं, क्योंकि अगर उत्तर हाँ होता, तो जापानियों की एक आबादी रात-भर में ही अपनी धरती से पराए होने के लिए आरोपित कर दी जाती, क्योंकि वे बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं, जो कि भारतीय मूल का है। इसी तरह यूरोप व अमेरिका के बड़े हिस्सों को अपनी देश-भक्ति की विश्वसनीयता पर पुनर्विचार करना होगा, क्योंकि ईसाईयत बेथलहम में जन्मी, जो कि फिलिस्तीन में है।

भारत ही नहीं विश्व भर में बहुसंख्यकों व अल्पसंख्यकों के मध्य रिश्ते तनावपूर्ण हैं किंतु भारतीय मुसलमान विश्व के अन्य देशों के मुसलमानों की तुलना में अपनी स्थिति बेहतर मानते हैं। भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है फिर भी सांप्रदायिक ताकतें लगातार आपसी रिश्तों को तार-तार करने में लगी रहती हैं। कथाकार असगर वजाहत लिखते हैं- ''मैं अक्सर ईश्वर, अल्लाह, प्रभु, ईशु को धन्यवाद देता हूँ कि मैं भारतीय मुसलमान हूँ। जरा कल्पना कीजिए कि यदि मैं अरबी, इराकी, ईरानी मुसलमान होता, तो क्या होता? क्या आदमी की सबसे बड़ी आवश्यकता आजादी वहाँ इतनी होती ?''[3]

आज धर्म को राजनीति के साथ जोड़ दिया गया है। पहले धर्म और राजनीति अलग-अलग थी। धर्म जब व्यक्ति और समाज को त्यागकर राजनीति का दामन थाम लेता है तो उसकी मानवीय भूमिका समाप्त हो जाती है, तब वहाँ नफरत की फसल उगती है। सांप्रदायिकता और कठमुल्लापन इसका दूसरा नाम है। कुछ लोग 'इस्लाम खतरे में है' तो कुछ लोग 'हिंदुत्व खतरे में है' का नारा लगाकर सांप्रदायिकता की आग को भड़काते हैं और अपनी राजनीति की रोटी सेंकते हैं।

जब भी सांप्रदायिक दंगे होते हैं उसमें न तो हिंदू मरते हैं, न ही मुसलमान मरते हैं, वहाँ पर इंसानियत की हत्या होती है। अल्पसंख्यकों की धार्मिक भावनाएँ आहत करके दंगे को भड़काया जाता है ताकि बाद में उन्हें ही कट्टर घोषित किया जा सके। पत्रकार इकबाल बहादुर राय की हत्या दंगे में होती है, उन्हें मुस्लिम मोहल्ले में रिपोर्टिंग के लिए भेजा जाता है वहाँ पर उन्हें हिंदू समझकर मार दिया जाता है। जमील को यह खबर तिवारी जी देते हैं कि-

> ''आपके मित्र इकबाल बहादुर राय की लाश मेरे दरवाजे पर रखी है।... उनका अंतिम संस्कार करना है।'...
> 'मगर एक सज्जन आए हैं, वे कह रहे हैं कि राय साहब मुसलमान हैं।'
> 'हैं नहीं, थे।''[4]

एक इंसान मारा जा रहा है इसकी चिंता नहीं है बल्कि लाश को सामने रखकर हिंदू-मुसलमान बनाने की प्रक्रिया चल रही है। ये ऐसे दाग हैं जो सभ्य समाज की सुंदरता को विकृत करते हैं। दंगा तो एक-दो दिन होता है लेकिन उसका प्रभाव कितना दूरगामी होता है ये किसी से छिपा नहीं है। आजादी के बाद से ये दंगे की आग अभी तक बुझी नहीं है। भीतर ही भीतर सुलगती रहती है। इसे बुझाने वाले कम और हवा देने वाले लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है।

> प्रो. विपिन चंद्रा के अनुसार, ''सांप्रदायिकता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार एक धर्म को मानने वाले समूह के सदस्यों के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हित समान होते हैं।''[5]

*......इससे स्पष्ट होता है कि सांप्रदायिकता केवल धार्मिक कारणों से ही नहीं बल्कि आर्थिक विषमता व सामाजिक उत्पीड़न के कारण भी जन्म लेती है। आजादी के सुनहरे सपने से संपूर्ण भारतीय जनता को एक उम्मीद थी। जाहिर है इसमें मुसलमान भी सम्मिलित थे। आजादी के बाद आम आदमी बुरी तरह हताशा से घिरता चला गया। सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण मुसलमान समाज स्वकेंद्रित होने लगा। बहुसंख्यक वोट बैंक के तुष्टीकरण की राजनीति के चलते मुसलमान समाज सभी स्तरों पर उपेक्षा का शिकार हुआ। वे अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी के शिकार होते चले गए। मुस्लिम समाज की ये समस्याएँ आज अन्य समुदायों की तुलना में काफी भयावह है। इन परिस्थितियों का कठमुल्लों ने फायदा उठाया और ये लोग मुस्लिम समाज के स्वयंभू नेता बन गए और असुरक्षा बोध के चलते मुस्लिम समाज धीरे-धीरे इन कठमुल्लों की गिरफ्त में आता गया। और अब अपने राजनीतिक हितों के लिए ये नेता उनका इस्तेमाल करते हैं।

भारत में मुसलमान होने के क्या मायने हैं? 'अपवित्र आख्यान' में ही हमें मुसलमानों के दो भिन्न रूप देखने को मिलते हैं। पहले वर्ग में डॉ. सादिक, यासमीन तथा उसके परिवार के लोग और नकवी जैसे नेता हैं। दूसरे वर्ग में इकबाल अहमद जैसे लोग हैं। इन दोनों वर्गों के विभाजन से स्पष्ट है कि मुस्लिम समाज में भी सभी एक जैसे नहीं हैं। किसी भी समुदाय की तरह मुसलमानों में भी सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से पर्याप्त विविधता मौजूद है, पर आम लोगों के मन में उसके एकसमान और एकजुट समुदाय होने की भ्रांति बनी हुई है। यासमीन तथा डॉ. सादिक जैसे मुसलमानों को उनकी आर्थिक पहचान से फायदा मिलता है। अतः वे लोग अपनी धार्मिक पहचान पर बल देते हैं। जबकि इकबाल अहमद उस अल्पसंख्यक मुसलमान का प्रतिनिधित्व करता है जिसे अपने जीवन निर्वाह के लिए नाम बदलकर नौकरी करनी पड़ती है। इकबाल अहमद को इकबाल बहादुर राय बनने पर एक अखबार के दफ्तर में नौकरी मिलती है। इसलिए उसे भारत केवल नाम का 'सेक्युलर' देश लगता है। भारतीय संविधान में भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कहा गया है फिर भी मुसलमानों के साथ उचित न्याय न होने की दशा में इकबाल कहता है- ''इसलिए कि हम यहाँ दूसरे दर्जे के शहरी हैं। एक सेक्युलर मुल्क होते हुए भी हिंदुस्तान असल में हिंदू मुल्क है।''[6]

भारत में मुसलमानों के साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। हर क्षेत्र में उनके साथ भेदभाव होता है। अगर कहीं नौकरी की जगह खाली होती है, चाहे निजी क्षेत्र हो या सरकारी उसमें मुसलमान को आखिरी विकल्प मानकर चला जाता है। यह भेदभाव सामान्य स्तर पर अनपढ़ लोगों द्वारा किया जाता है तो एक बार उनके इस व्यवहार को नकारा जा सकता है किंतु जब पढ़े-लिखे, सोचने-समझने और समाज में अपनी भूमिका तय करने वाले लोगों द्वारा यह व्यवहार किया जाता है तब यह चिंताजनक है। अखबार जो समाज को बेहतर बनाने के लिए निष्पक्ष भाव से सबकी समस्याओं को उठाता है और सबके हित की बात करता है वहाँ पर रहते हुए इकबाल अहमद को जो अनुभव होता है वह मुसलमानों के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार को उजागर करता है-''अगर मैं इकबाल बहादुर राय हूँ तो समझिए, खुश हूँ, पर अगर मैं इकबाल अहमद हूँ...जमील साहब, हमारे दफ्तर में ईद, बकरीद, मुहर्रम वगैरह की छुट्टी नहीं होती। प्रेस में एक मुसलमान मजदूर है, जिसे बाकायदा दरख्वास्त देकर छुट्टी लेनी पड़ती है और उस दिन की उसे तनख़्वाह नहीं मिलती। ईद की नमाज मैं उसी साल पढ़ता हूँ जिस साल सन-डे को ईद होती है। हमारे अखबार में नवरात्र, गणेश-पूजन और न जाने कौन-कौन से त्योहारों के विवरण छपते हैं- सचित्र, पर हमारे त्योहारों की न्यूज रद्दी की टोकरी में डाल दी जाती है। दंगों की खबरें इस तरह छापी जाती हैं कि मुसलमान ही दंगाई साबित हों। लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकता। अब अगर यह खुशी है, तो ठीक ही है।''[7]

ऐसे खतरनाक वक़्त को देखकर पत्रकार रवीश कुमार का कहना है कि ''मरना सिर्फ श्मशान या कब्रिस्तान में दफन कर देना, या जला देना नहीं है। मरना वो डर

[2] कैसर, रिजवान, भारतीय मुसलमानों की दशा और दिशा, पृ.-28,(पत्रिका, हंस)

[3] वजाहत, असगर (अ.सं.), भारतीय मुसलमान: वर्तमान और भविष्य, पृ.-6, (पत्रिका, हंस)

[4] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-140

[5] राय, विभूति नारायण, सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस, पृ.-17

[6] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-39

[7] वही, पृ.-36

भी है जो आपको बोलने से, आपको लिखने से, आपको कहने से और सुनने से डराता है। हम मर गए हैं।''[8]

पत्र-पत्रिकाओं व मीडिया के अन्य माध्यमों पर बहुसंख्यकों का ही कब्जा है जिसके कारण अल्पसंख्यकों की समस्याओं को अक्सर दरकिनार कर दिया जाता है। मुसलमानों की समस्याओं को समस्या न मानकर उसे उनके धार्मिक मामले से जोड़ दिया जाता है। 'तूणीर' पत्रिका के संपादक द्वारा मुसलमानों पर केंद्रित एक अंक निकालने की योजना है लेकिन उनका उद्देश्य उनकी समस्याओं को, सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन को दिखाने का नहीं बल्कि धार्मिक रूप से कट्टर और अंधविश्वासी छवि को प्रचारित करने का होता है-

''मतलब यह कि 'तूणीर' का एक अंक हम मुसलमानों की पहचान पर केंद्रित करने जा रहे हैं। आप इसके लिए कुछ लिखिए। कोई धाँसू चीज।
मसलन?
मसलन यही कि मुसलमान लोग एक से अधिक शादियाँ करते हैं...''[9]

अगर ये मुस्लिम समाज में बुराईयाँ हैं तो उन्हें बुराईयों की तरह दिखाया जाए। स्त्रियों के अधिकारों को लेकर बात की जाए न कि मुस्लिम समाज की पहचान ही धार्मिक रूढ़िवादी समाज के रूप में की जाए। हिंदू समाज में भी लोग कई शादियाँ करते हैं इसका उदाहरण जमील ने दिया कि प्रेमचंद व जयशंकर प्रसाद ने भी एक से अधिक शादियाँ की थीं। हिंदू समाज ने फिर भी अपने नियमों को बदलते हुए स्त्री-स्वाधीनता को बढ़ावा दिया है। लेकिन मुस्लिम समाज अपने भीतर ये बदलाव नहीं कर पाया या कर पा रहा है उसके संदर्भ में तसलीमा नसरीन का अनुभव कहता है- ''जो राजनीति भारत में निर्लज्जता से विराजमान है वह है धर्म की राजनीति। राजनीतिक गण तो आज भी बुखारी से बरकती तक से दौड़ते-फिरते हैं। मुसलमानों के कितने वोट कौन पा सकेगा उसी की प्रतियोगिता देश में सर्वत्र चलती है। मुसलमान रूढ़िवादियों को खुश करने से मुसलमान जनता का वोट मिलता है। इस निहायत आसान समीकरण से ही चलता है भारत वर्ष का निर्वाचन। मुसलमानों को सभ्य और शिक्षित करना, उसमें नयी चेतना का संचार करना, उन्हें ज्ञान से आलोकित करना- जिस तरह मुसलमान रूढ़िवादी नहीं चाहते, उसी तरह मुसलमानों के वोट से लोभग्रस्त राजनीतिक नेता भी नहीं चाहते। मुसलमान मस्जिद और मदरसे चाहते हैं, कुरान का कानून चाहते हैं, स्त्रियों की योनि का खतना करना चाहते हैं, बाल-विाह चाहते हैं, बहु-विवाह चाहते हैं, स्त्रियों की पराधीनता चाहते हैं- इस धर्मनिरपेक्ष गणतांत्रिक देश में मुसलमानों की ये सब माँगें, ये अन्यायपूर्ण और गलत माँगें पूरी करने के लिए सारे राजनैतिक नेता और दल एक पैर पर खड़े हैं।''[10]

भारत में अन्य समुदायों की अपेक्षा मुस्लिम समुदाय की स्त्रियों के हालात और भी बदतर है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, स्वतंत्रता हर मामले में मुस्लिम स्त्री की दशा शोचनीय है। मुस्लिम समुदाय में स्त्रियों की दशा में सुधार न होने के प्रमुख कारण ये हैं कि मुस्लिम समुदाय में कोई खास बदलाव नहीं हुआ है, साथ ही बड़े पैमाने पर समाज सुधार के प्रयास भी नहीं हुए, जो बेहद जरूरी थे। मुस्लिम औरतों के पास आर्थिक स्वतंत्रता नहीं है, शिक्षा का अभाव है, वे स्कूल तो जाती हैं पर चौथी-पाँचवीं कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देती हैं। उनकी पढ़ाई को छोड़ने का कारण यह नहीं है कि मुस्लिम औरतें परदे में रहती हैं, मुस्लिम औरतों के न पढ़ने का कारण गरीबी है। उनकी स्थिति अनुसूचित जाति की तरह है, जिस वजह से अनुसूचित जाति की औरत नहीं पढ़ पाती हैं, उसी वजह से मुस्लिम औरत भी नहीं पढ़ पाती हैं। धर्म उतना बड़ा कारण नहीं है। जमील की शादी जब राबिया देवी से होती है तो उसकी शिक्षा और परिवार की स्थिति से कारण स्पष्ट हो जाता है-

[8] कुमार, रवीश, 'हमारे बगल में बैठा खतरनाक वक्त, पृ.-46,(पत्रिका, समयांतर)

[9] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-131

[10] नसरीन, तसलीमा, कुछ गद्य कुछ पद्य..., पृ.-138

''उन्होंने यह नई लड़की ढूँढ़ दी। हाईस्कूल फेल। पिता अति साधारण व्यक्ति, मगर स्थानीय स्तर पर थोड़ी-बहुत नेतागिरी कर लेते थे। मां निरी अनपढ़। रहन-सहन गाँव के अन्य लोगों जैसी ही।''[11]

हिंदू-मुसलमानों की सांस्कृतिक एकता में जहर घोलने के लिए कट्टर हिंदूवादी तर्क देते हैं कि मुस्लिमों की जनसंख्या वृद्धि दर अन्य समुदायों की वृद्धि दर से ज्यादा है। इसका मुख्य कारण मुसलमानों में शिक्षा का अभाव है। महिला साक्षरता दर की कमी व महिलाओं के विवाह की औसत आयु का कम होना है।

इस्लाम धर्म की मान्यताएँ व विश्वास हिंदू धर्म की मान्यताओं के काफी करीब हैं। रोजा या उपवास की प्रक्रिया हिंदू धर्म में भी है, जिसमें नवरात्रि के नौ दिन के व्रत रखे जाते हैं। इसी तरह तीर्थ यात्रा (हज), दान देना (जकात), ईश्वर आराधना (नमाज़) इत्यादि की प्रक्रिया भी हिंदू धर्म से मिलती-जुलती है। मुस्लिम समाज के कुछ अपने धार्मिक विश्वास हैं- कुरान, हदीस, कयामत, फरिश्ते, जन्नत, दोजख, पैगंबर, जिन्न, जेहाद आदि। इसी तरह हिंदू समाज के भी अपने धार्मिक विश्वास हैं- गीता, देवी-देवता, स्वर्ग, नरक, अवतार, राक्षस इत्यादि। मुस्लिमों के जन्म संस्कार, विवाह की रीतियाँ, मृत्यु संस्कार को ध्यान से देखने पर, हिंदू संस्कारों से पर्याप्त समानता देखने को मिलती है। इसके बावजूद समाज के विघटनकारी तत्व साझी सांस्कृतिक विरासत की बात न करके सांस्कृतिक भिन्नता को आधार बनाकर आचार-व्यवहार, भाषा व पहनावा को लेकर हिंदू व मुस्लिम दोनों समुदायों को भड़काए रखना चाहते हैं। एक-दूसरे के आचार-व्यवहार को कमतर दिखाने की कोशिश की जाती है। उपन्यास में जमील की पत्नी राबिया देवी जो कि ऐसे गाँव से होती हैं जहाँ पर हिंदू-मुस्लिम परिवार आपस में मिलकर रहते हैं। इस कारण उन पर हिंदू संस्कारों का भी प्रभाव रहता है। पहनावे से लेकर सिंदूर व बिंदी लगाना भी उनके जीवन में शामिल होता है। इस कारण जमील के मुसलमान दोस्त उसकी पत्नी को हिंदू समझते हैं और जमील को सलाह देते हैं-

''हर्ज है जमील साहब, हर्ज है, सिद्दीकी साहब ने जोर देकर कहा, इस्लाम इसकी इजाजत नहीं देता। हमें काफिरों जैसा बाना नहीं अख्तियार करना चाहिए।''[12]

समाज में सिद्दीकी साहब जैसे लोग होते हैं जो नाम और पहनाव को लेकर परेशानी खड़ी करते रहते हैं वहीं राम-प्रसाद 'हठी' जैसे लोग होते हैं जो मुस्लिम स्त्रियों के पहनावे को लेकर मजाक बनाने में पीछे नहीं रहते-

''ओढ़े सिर पर और कहें बुरका।''[13]

समाज में दोनों समुदायों में भावनाएँ भड़काने वाले लोग मौजूद हैं जो एक सामान्य और अमन पसंद व्यक्ति को भी सांप्रदायिक बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं। ये लोग समाज को हमेशा बाँटकर रखना चाहते हैं ताकि उनकी प्रभुता कायम रहे और उनके अपने स्वार्थ सधते रहें। जमील जैसा प्रगतिशील सोच रखने वाला युवक अपनी पहचान एक इंसान के रूप में बनाए रखने की करता है जबकि यह 'सभ्य समाज उसे बार-बार अहसास दिलाता है कि वह अमुक जाति या धर्म का है। यासमीन जमील से कहती है-

''क्यों नहीं! कल को यह भी भूल जाओगे कि तुम मुसलमान हो।'' यासमीन के इस प्रश्न का जवाब देते हुए जमील कहता है-
'नहीं, यह तो मैं चाहकर भी नहीं भूल सकूँगा। लोग भूलने ही न देंगे।''[14]

[11] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-99

[12] बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-105

[13] वही, पृ.-163

[14] वही, पृ.-23

प्रत्येक जाति अपनी श्रेष्ठता की दुहाई देती है और अन्य जाति को कमतर दिखाने की कोशिश करती है। यह 'जाति व्यवस्था' मात्र हिंदू धर्म में ही नहीं है बल्कि मुसलमानों में भी है।

लेकिन ''मुसलमानों में स्थिति कुछ भिन्न है। नमाज अदा करने के लिए मस्जिदों में प्रवेश पर कोई प्रतिबंध नहीं है और अछूत प्रथा स्पष्ट नहीं है। लेकिन सामाजिक स्थिति के सूचक तथा सामाजिक अंतःक्रिया को नियंत्रित करने वाले वर्ण तथा जाति जैसे विभेद मौजूद हैं।... ये विभेद विवाह, अंतर्भोज तथा समारोहों और अन्य सामाजिक आयोजनों में भागीदारी जैसी अंतर्समूह सामाजिक अंतर्क्रिया का निर्धारण करते हैं। मूल याद किए जाते हैं और हिंदू धर्म से इस्लाम धर्म अंगीकार करने वाले अब भी बड़े पैमाने पर अपने पुराने जातिगत व्यवसायों में ही लगे हैं। मुगलकाल में सैयद, शेख, मुगल और पठानों के विभाजनों की समानता प्रायः हिंदू समाज के वर्ण विभाजनों से दिखायी जाती थी और भारत के कुछ भागों में हिंदू धर्म से इस्लाम ग्रहण करने वाले इन्हीं विभाजनों में से किसी एक में शामिल होना आवश्यक मानते थे।... सैय्यद पैगम्बर की बेटी के जरिए उनके परिवार के वंशज हैं। वे अरब मूल के हैं। लेकिन इस्लाम में धर्मांतरित अनेक उच्चतर जातियाँ इस प्रस्थिति का दावा करती है।''[15]

विवेच्य उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में इस जातिगत विभेद को स्पष्ट किया गया है। सिद्दीकी साहब के बारे में जहाँ प्रचलित था कि-

''सबसे बड़ा गर्व तो उन्हें अपने सिद्दीकी होने पर था। मुसलमानों में जितनी भी तथाकथित नीची जातियाँ होती थीं उन सबसे उनको सख्त परहेज था।''[16]

इसी तरह जनाब इकरार हुसैन खाँ में भी अपनी जातिगत श्रेष्ठता का भाव होता है। वे अपने बारे में कहते हैं-

''हम ठाकुर हैं। हमारा खानदान ठाकुर से मुसलमान हुआ है।''[17]

मुस्लिम समाज को एकजुट और एकसमान बताए जाने के पीछे मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियों की बड़ी भूमिका है। चूंकि मुसलमानों में जाति-व्यवस्था अभी तक हिंदुओं जितनी स्पष्ट विभाजन करने वाली और शोषक नहीं हुई है। फिर भी विभिन्न राजनीतिक पार्टियों और शासन से जुड़ी संस्थाओं में आए मुस्लिम प्रतिनिधियों के नाम और जाति पर गौर करने पर हम पाते हैं कि उनमें अधिकाश ऊंची जाति/वर्ग के ही हैं। हिंदुओं की भांति मुस्लिमों में भी उच्च व निम्न जाति के बीच हक की लड़ाई चलती रहती है। उपन्यास में सिद्दीकी साहब जमील से कहते हैं-

''ये हिंदू साले वैसे तो सवर्ण-अवर्ण की बात करते हैं मगर जब मसुलमान सामने आता है तो उसके खिलाफ एक हो जाते हैं।''[18] लेकिन यही काम मुसलमान भी करते हैं। पहले तो इंसाफ और ईमानदारी की बात करते हैं लेकिन जब बिरादरी की बात आती है तो उसी तरफ झुकते हैं। मुसलमानों में भी शिया और सुन्नी को लेकर भेद है। शिया मुसलमान अपने को सुन्नी से श्रेष्ठ मानते हैं। शिया और सुन्नी के बीच भी रिश्ते कटु होते हैं-

''मगर बेटा ये नकवी लोग तो शिया होते हैं न,... अगर इन लोगों को हिंदू और सुन्नी मुसलमान में से इंतखाब करना हो तो ये हिंदू को ही तरजीह देते हैं।''[19]

दरअसल, मुसलमानों को एकजुट या एक समान समूह के रूप में पेश करने की आम अवधारणा की जड़ें हिंदी पट्टी के मुस्लिम अमीरों के अपने वर्ग-चरित्र में ही निहित हैं। विभाजन के बाद यहाँ के, खासकर उत्तर प्रदेश के जमींदारों और ताल्लुकेदारों के सामने दो स्थितियां आईं। उनमें से काफी सारे लोग पाकिस्तान चले गए और दूसरे बचे हुए लोगों की जमींदारियां छिन गयीं। इसलिए उन्हें अपनी सत्ता, शक्ति, सुख-सुविधाओं को बचाए रखने के लिए दूसरे तरीकों को अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। यह काम खुद को हिंदुस्तानी-मुसलमानों का वास्तविक वैध प्रतिनिधि बताने और फिर इस नाम पर शासन के संसाधनों का सुख लूटने के रूप में हुआ।

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने दूसरे उपन्यास 'समर शेष है' में मुस्लिम समाज की जाति का ऐतिहासिक और सामाजशास्त्रीय विश्लेषण बखूबी किया है-

''मुसलमान इस देश में आए तो यहाँ के लोगों को उन्होंने बरगलाया। जाति प्रथा के कोढ़ से ग्रस्त लोगों को इस्लामी मासवात (समतावाद) की तकरीर दिलायी गयी और समाज में बराबरी का दर्जा पाने के लिए वे मुसलमान हो गए लेकिन मासवात कुरआन और हदीस की किताबों से बाहर नहीं निकला। मुसलमानों में भी जातियाँ और उपजातियाँ बन गयीं, बनी रहीं, बरकरार रहीं। हिंदू समाज में जो नाई था वह मुस्लिम समाज में नाई ही रहा। सिर्फ वह राम प्रसाद की जगह रहमान हो गया। हिंदुइया नाऊ तो मुसमनिया नाऊ बन गया। ठाकुर सब पठान हो गए। जो ब्राह्मण बदले वो सैय्यद हो गए। ऊँच-नीच का भेद बना रहा। मासवात चला गया भाड़ में।''[20]

हिंदू और मुस्लिम संभ्रांत वर्ग ने अपने हित में देश का विभाजन कराया। एक तरफ इस्लामी कट्टरता तो दूसरी ओर हिंदुत्ववादी कट्टरपंथ लोगों को धर्म के नाम पर ही उलझाकर रखता है। आज भी देश में सरकारें मात्र मंदिर-मस्जिद के मुद्दे को उठाकर बन जाती हैं। लोग भी धर्म के नाम पर 'पुण्य' कमाने के लिए चंदा देना अपना कर्तव्य समझते हैं। 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में मस्जिद के नाम पर औरतें अपना सोने का जेवर भी दे आती हैं जो कि उनकी प्रिय वस्तुओं में शामिल होती है-

''कमरून कल शाम को जाकर अपना छागल दे आयी थी। बता रही थी कि रात में बहुत सारी औरतों ने ताँबे-पीतल के बर्तन से लेकर अपने सोने के जेवर भी दे दिए हैं। मस्जिद के लिए। आखिर अल्ला ताला का घर बन रहा है, क्यों न कोई सवाब ले?''[21]

कभी जिन दलितों को मंदिर में प्रवेश की भी अनुमति नहीं थी आज उन्हें बड़े गर्व से हिंदू बताया जाता है। हिंदू धर्म में यह उच्च जाति या वर्ग के लोगों द्वारा अपनी संस्कृति को भारतीय संस्कृति के रूप में पेश करना उनकी 'सत्ता और समाज' में प्रतिष्ठित बने रहने का साधन मात्र है। आज भले ही 'गाय' के नाम पर मुसलमानों को चिह्नित करके मारा जाता है, 'अखलाक' इसका ताजा उदाहरण है। लेकिन ''सभ्यता के जिस आदि युग में ब्राह्मणों ने वेदों की रचना की होगी, उस समय गोमांस को आध्यात्मिक भोजन माना जाता था।''[22] उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में भी अब्दुस्सलाम नादाँ, जमील को बताते हैं कि कुछ हिंदू (ब्राह्मण) भी जो स्वयं को शाकाहारी और सात्विक आहारी बताते हैं वे भी माँस खाते हैं। वे परहेज नहीं करते, बस मुसलमानों को ही सब मांसाहारी दिखते हैं। उन्हीं से लोगों को दिक्कतें हैं बाकी तो सभी को अधिकार है कि वे कुछ भी खाएँ, पिएँ और पहनें। उनसे किसी को दिक्कत नहीं होती है। नादाँ साहब कहते हैं-

''वैसे साहब, अब तो कुछ हिंदू लोग भी 'बड़ा' खाने लगे हैं। मेरा एक जानने वाला है। है तो साला बिरहमन, मगर कीमे की पकौड़ियों पर जान देता है। मैंने उसे बताया भी कि इनमें बड़े का कीमा होता है, मगर कहता क्या है, कि भई मजेदार तो है। समझे जमील साहब!''[23]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदू-मुस्लिम समुदायों के भीतर एक-दूसरे के प्रति अविश्वास और नफरत का वातावरण बना है। जिसका कारण उनमें संवादहीनता या एक दूसरे को न समझना है। इसके पीछे दोनों समुदायों में उपस्थित प्रभुवर्ग का अपना स्वार्थ छिपा है जो दोनों समुदायों की एकता नहीं चाहता है। राजनेता, बुद्धिजीवी या अन्य चेतनासंपन्न व्यक्तियों से उम्मीद की जाती है कि वे साझी

15 दुबे, श्यामचरण, भारतीय समाज, पृ.-54-55

16 बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-63

17 वही, पृ.-66

18 वही, पृ.-53

19 बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-76

20 सिंह, धर्मवीर (सं.), साहित्य और सामाजिक न्याय, पृ.-58

21 बिस्मिल्लाह, अब्दुल, झीनी-झीनी-बीनी चदरिया, पृ.-14

22 अइलैय्या, कांचा, हिंदुत्व-मुक्त भारत, पृ.-107

23 बिस्मिल्लाह, अब्दुल, अपवित्र आख्यान, पृ.-94-95

सांस्कृतिक विरासत के तत्वों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करें ताकि एकता का भाव दृढ़ हो। जबकि उपन्यास के माध्यम से हम देखते हैं कि समाज में भिन्नता प्रदर्शित करने वाले तत्वों को ही उजागर करने वाले लोगों की संख्या अधिक है जिससे सामाजिक अंतर्द्वंद्व की स्थिति बनी हुई है।

संदर्भ-सूची

1. बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2012). अपवित्र आख्यान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-81-267-2193-1
2. यादव, राजेंद्र (सं.). (अगस्त 2003). हंस. अंक-1. पूर्णांक-203. वर्ष: 18. दिल्ली: अक्षर प्रकाशन
3. राय, विभूति नारायण.(2016). सांप्रदायिक दंगे और भारतीय पुलिस. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. तीसरा संस्करण. ISBN: 978-81-7119-721-7
4. बिष्ट, पंकज. (अक्टूबर 2016). समयान्तर. अंक-1. वर्ष-48. दिल्ली: ISSN 2249-0469
5. नसरीन, तसलीमा. (2016). कुछ गद्य कुछ पद्य. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. प्रथम संस्करण. ISBN: 978-93-5229-464-0
6. दुबे, श्यामचरण. (2002). भारतीय ग्राम. अटल, योगेश(अनु.). नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. ISBN: 81-7055-465-9
7. बिस्मिल्लाह, अब्दुल.(2014). झीनी-झीनी बीनी चदरिया. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. दूसरा संस्करण. ISBN: 978-81-7178-669-5
8. अइलैय्या, काँचा. (2017). हिन्दुत्व-मुक्त भारत. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन. ISBN: 978-93-859-8545-4(PB)